बिहार सरकार
पशु एवं मत्स्य संसाधन विभाग

पशुपालन सूचना एवं प्रसार कार्यालय
ऑफ पोलो रोड, पटना

बिहार सरकार
पशु एवं मत्स्य संसाधन विभाग

गाय एवं भैंस पालन

प्रबंधन, रोग एवं उपचार

पशुपालन सूचना एवं प्रसार कार्यालय, बिहार, पटना द्वारा प्रकाशित

बिहार सरकार
पशु एवं मत्स्य संसाधन विभाग

पशुपालन सूचना एवं प्रसार कार्यालय
ऑफ पोलो रोड, पटना

बिहार सरकार
पशु एवं मत्स्य संसाधन विभाग

गाय एवं भैंस पालन
प्रबंधन, रोग एवं उपचार

पशुपालन सूचना एवं प्रसार कार्यालय, बिहार, पटना द्वारा प्रकाशित

बिहार सरकार
पशु एवं मत्स्य संसाधन विभाग

पशुपालन सूचना एवं प्रसार कार्यालय
ऑफ पोलो रोड, पटना

बिहार सरकार
पशु एवं मत्स्य संसाधन विभाग

गाय एवं भैंस पालन

प्रबंधन, रोग एवं उपचार

पशुपालन सूचना एवं प्रसार कार्यालय, बिहार, पटना

गाय एवं भैंस पालन

प्रबंधन, रोग एवं उपचार

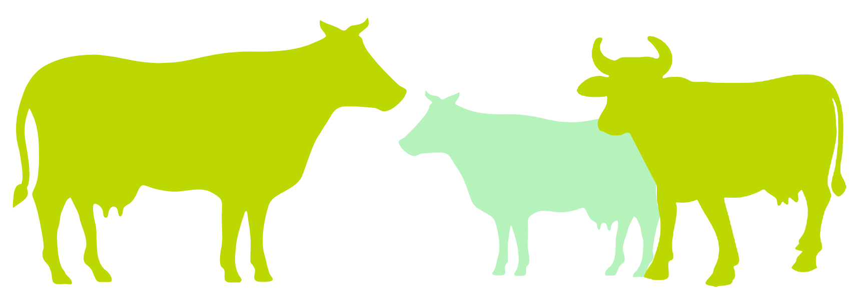

इलाज करने से बचाव का इन्तजाम बेहतर है!

मवेशी या अन्य पशुधन के बीमार हो जाने पर उनका इलाज करने के वनिस्पत उन्हें तंदरूस्त बनाये रखने का इन्तजाम करना ज्यादा अच्छा है। कहावत प्रसिद्ध है **''समय से पहले चेते किसान''**। पशुधन के लिए साफ–सुथरा और हवादार घर–बथान, संतुलित खान–पान तथा उचित देख भाल का इन्तजाम करने पर उनके रोगग्रस्त होने का खतरा काफी हद तक टल जाता है। रोगों का प्रकोप कमजोर मवेशियों पर ज्यादा होता है। उनकी खुराक ठीक रखने पर उनके भीतर रोगों से बचाव करने की ताकत पैदा हो जाती है। बथान की सफाई परजीवी से फैलने वाले रोगों और छूतही बीमारियों से मवेशियों का रक्षा करती है। तर्क रहकर पशुधन की देखभाल करने वाले पशुपालक बीमार पशु को झुंड से अलग कर अन्य पशुओं को बीमार होने से बचा सकते हैं। इसलिए पशुपालकों और किसानों को निम्नांकित बातों पर ध्यान देना चाहिए:

- पशुधन या मवेशी को प्रतिदिन ठीक समय पर भर पेट पौष्टिक चारा दाना दिया जाये। उनकी खूराक में सूखा चारा के साथ हरा चारा खल्ली–दाना और थोड़ा–सा नमक शामिल करना जरूरी है।
- साफ बर्तन में ताजा पानी भरकर मवेशी को आवश्यकतानुसार पीने का मौका दें।
- मवेशी का बथान साफ और उँची जगह पर बनायें। घर इस प्रकार बनायें कि उसमें सूरज की रौशनी और हवा पहुँचने की पूरी–पूरी गुंजाइश रहे। घर में हर मवेशी के लिए काफी जगह होनी चाहिए।
- बथान की नियमित सफाई और समय–समय पर रोगाणुनाशक दवाऐं जैसे फिनाइल या दूसरी दवा के घोल से उसकी धुलाई आवश्यक है।
- मवेशियों या दूसरे पशुधन को खिलाने की नाद ऊँची जगह पर बनाया जाये। नाद के नीचे कीचड़ नहीं बनने दें।
- घर बथान से गोबर और पशु–मूत्र जितना जल्दी हो सके खाद के गडढे में हटा देने का इन्तेजाम किया जाये।
- बथान को प्रतिदिन साफ कर कूड़ा–करकट को खाद के गड्ढे में डाल दिया जाय।
- मवेशियों को प्रतिदिन टहलने का मौका दिया जाये।

- मवेशियों के शरीर की सफाई पर पूरा ध्यान दिया जाये।
- उनके साथ लाड़–प्यार भरा व्यवहार किया जाये।
- मवेशियों में फैलने वाले अधिकतर संक्रामक रोग (छुतही बिमारियाँ) एन्डेमिक यानि स्थानिक होते हैं। ये बिमारियाँ एक बार जिस स्थान पर जिस समय फैलती है, उसी स्थान पर और उसी समय बार–बार फैला करती है। इसलिए समय से पहले ही मवेशियों को टीका लगवाने का इन्तेजाम करना जरूरी है। टीका पशुपालन विभाग की ओर से उपलब्ध रहने पर नाम मात्र का शुल्क लेकर लगाया जाता है। खुरहा–मुँहपका का टीका प्रत्येक वर्ष पशु स्वास्थ्य रक्षा पखबाड़ा के अन्तर्गत मुफ्त लगाया जाता है।

मवेशियों के प्रमुख रोग

मवेशियों में कई तरह के रोग फैलते हैं। मोटे तौर पर इन्हें निम्नांकित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है:

1. संक्रामक रोग या छुतही बीमारियाँ
2. सामान्य रोग या आम बीमारियाँ
3. परजीवी जन्य रोग

संक्रामक रोग (छुतही बीमारियाँ)

संक्रामक रोग संसर्ग या छूआ–छूत से एक मवेशी से अनेक मवेशियों में फैल जाते हैं। किसानों को इस बात का अनुभव है कि ये छुतही बीमारियां आमतौर पर महामारी का रूप ले लेती है। संक्रामक रोग प्रायः विषाणुओं द्वारा फैलाये जाते है, लेकिन अलग–अलग रोग में इनके प्रसार के रास्ते अलग–अलग होते हैं। उदाहरणतः खुरहा रोग के विषाणु बीमार पशु की लार से गिरते रहते हैं तथा गौत पानी में घुस कर उसे दूषित बना देते हैं। इस गौत पानी के जरिए अनेक पशु इसके शिकार हो जाते हैं। अन्य संक्रामक रोग के जीवाणु भी गौत पानी मृत के चमड़े या छींक से गिरने वाले पानी के द्वारा एक पशु से अनेक पशुओं को रोग फैल जाय तो मवेशियों के बचाव के लिए निम्नांकित उपाय कारगर होते हैं:

1. सबसे पहले रोग के फैलने की सूचना अपने नजदीक के पशुधन सहायक या ब्लॉक (प्रखंड) के पशुपालन पदाधिकारी को देनी चाहिए वे इसकी रोग–थाम का इन्तेजाम करते हुए बचाव की जानकारी देंगे।

2. अगर पड़ोस के गांव में बीमारी फैली हो तो उस गांव से मवेशियों या पशुपालकों का आवागमन बन्द कर दिया जाय।
3. सार्वजनिक तालाब या आहार में मवेशियों को पानी पिलाना बंद कर दिया जाय।
4. सार्वजनिक चारागाह में पशुओं को भेजना तुरंत बन्द कर देना चाहिए।
5. इस रोग के आक्रांत पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए।
6. संक्रामक रोग से भरे हुए पशु को जहाँ–तहाँ फेकना खतरे से खाली नहीं होता। खाल उतारना भी खतरनाक होता है। मृत पशु को जला देना चाहिए या 5–6 फुट गड्ढा खोद कर चूना के साथ गाड़ (विधिपूर्वक) देना चाहिए।
7. जिस स्थान पर बीमार पशु रखा गया हो या मरा हो उस स्थान को फिनाईल के घोल से अच्छी तरह धो देना चाहिए या साफ–सुथरा कर वहाँ चूना छिड़क देना चाहिए, ताकि रोग के जीवाणु या विषाणु मर जाएं।
8. खाल की खरीद–बिक्री करने वाले लोग भी इस रोग को एक गाँव से दूसरे गाँव तक ले जा सकते हैं। ऐसे समय में इसकी खरीद–बिक्री बंद रखनी चाहिए।

गलाघोंटू

यह बीमारी गाय–भैंस को ज्यादा परेशान करती है। भेड़ तथा सूअरों को भी यह बीमारी लग जाती है। इसका प्रकोप ज्यादातर बरसात में होता है।

लक्षण: शरीर का तापमान बढ़ जाता है और पशु सुस्त हो जाता है। रोगी पशु का गला सूज जाता है जिससे खाना निगलने में कठिनाई होती है। इसलिए पशु खाना–पीना छोड़ देता है। सूजन गर्म रहती है तथा उसमें दर्द होता है। पशु को सांस लेने में तकलीफ होती है, किसी किसी पशु को कब्जियत और उसके बाद पतला दस्त भी होने लगता है। बीमार पशु 6 से 24 घंटे के भीतर मर जाता है। पशु के मुंह से लार गिरती है।

चिकित्सा: संक्रामक रोग से बचाव और उनकी रोग–थाम के सभी तरीके अपनाना आवश्यक है। रोगी

पशु का इलाज नजदीकी चिकित्सालय में करवाना चाहिए। बरसात के पहले ही गलाघोंटू का टीका लगवा कर मवेशी को सुरक्षित कर लेना लाभदायक है। इसके मुफ्त टीकाकरण की व्यवस्था विभाग द्वारा की गई है।

जहरवाद (ब्लैक क्वार्टर)

यह रोग भी ज्यादातर बरसात में फैलता है। इसकी विशेषता यह है कि यह खास कर 6 महीने से 18 महीने के स्वस्थ बछड़ों को ही अपना शिकार बनाता है। इसको सूजवा के नाम से भी पुकारा जाता है।

लक्षण: इस रोग से आक्रांत पशु का पिछला पुट्ठा सूज जाता है। पशु लंगड़ाने लगता है। किसी किसी पशु का अगला पैर भी सूज जाता है। सूजन धीरे–धीरे शरीर के दूसरे भाग में भी फैल सकती है। सूजन में काफी पीड़ा होती है तथा उसे दबाने पर कुड़कुड़ाहट की आवाज होती है। शरीर का तापमान 104 से 106 डिग्री रहता है। बाद में सूजन सड़ जाती है तथा उस स्थान पर सड़ा हुआ घाव हो जाता है।

चिकित्सा: संक्रामक रोग से बचाव और उनकी रोक–थाम के तरीके, जो इस पुस्तिका में अन्यत्र बतलाए गए हैं, अपनाए जाएं। पशु चिकित्सक के परामर्श से रोग ग्रस्त पशुओं का इलाज करना चाहिए। बरसात के पहले सभी स्वस्थ पशुओं को इस रोग का निरोधक टीका लगवा देना चाहिए।

प्लीहा या पिलबढ़वा (एंथ्रेक्स)

यह भी एक भयानक संक्रामक रोग है। इस रोग से आक्रांत पशु की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। इस रोग के शिकार मवेशी के अलावे भेड़, बकरी और घोड़े भी होते हैं।

लक्षण: तेज बुखार 106 डिग्री से 107 डिग्री तक। मृत्यु के बाद नाक, पेशाब और पैखाना के रास्ते खून बहने लगता है। आक्रांत पशु शरीर के विभिन्न अंगों पर सूजन आ जाती है। प्लीहा काफी बढ़ जाती है तथा पेट फूल जता है।

चिकित्सा: संक्रामक रोगों की रोक–थाम उनसे बचाव के तरीके अपनाए तथा पशु–चिकित्सक की सेवाएं प्राप्त करें। यह रोग भी स्थानिक होता है। इसीलिए समय रहते पशुओं को टीका लगवा देने पर पशु के बीमार होने का खतरा नहीं रहता है।

खुरहा–मुँहपका (फुट एण्ड माउथ डिजीज)

यह रोग बहुत परेशान करता है और इसका संक्रामण बहुत तेजी से होता है। यद्यपि इससे आक्रांत पशु के मरने की संभावना बहुत ही कम रहती है तथापि इस रोग से पशु पालकों को काफी नुकसान होता है क्योंकि पशु कमजोर हो जाता है तथा उसकी कार्यक्षमता और उत्पादकता काफी दिनों के लिए कम हो जाता है। यह बीमारी गाय, बैल और भैंस के अलावा भेड़ों को भी अपना शिकार बनाती है।

लक्षण: बुखार हो जाना, भोजन से अरूची, उत्पादकता कम होना, मुंह और खुर में पहले छोटे–छोटे दाने निकलना और बाद में पक कर घाव हो जाना आदि इस रोग के लक्षण है।

चिकित्सा: संक्रामक रोग की रोक–थाम के लिए बतलाए गए सभी उपायों पर अमल करें। मूंह के छालों को फिटकिरी के 2 प्रतिशत घोल से साफ करें। पैर के घाव को फिनाइल के घोल से धोना चाहिए। पैर में तुलसी अथवा नीम के पत्ते का लेप भी फायदेमन्द साबित होता है। गाँव में खुरहा–चपका फुटपाथ बनाकर उसमें से होकर आक्रांत पशुओं को गुजरने का मौका देना चाहिए। घावों को मक्खी से बचाना अनिवार्य है।

बचाव: पशु को साल में दो बार छः माह के अन्दर पर रोग निरोधक टीका लगवाना चाहिए।

पशु–यक्ष्मा (टी. बी.)

मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए भी इस रोग से काफी सतर्क रहने की जरूरत है क्योंकि यह रोग पशुओं के संसर्ग में रहने वाले या दूध इस्तेमाल करनेवाले मनुष्य को भी अपने चपेट में ले सकता है।

लक्षण: पशु कमजोर और सुस्त हो जाता है। कभी–कभी नाक से खून निकलता है, सूखी खांसी भी हो सकती है। खाने की रूचि कम हो जाती है तथा उसके फेफड़ों में सूजन हो जाती है।

चिकित्सा: संक्रामक रोगों से बचाव का प्रबंध करना चाहिए। संदेह होने पर पशु की जाँच कराने के बाद संक्रमित पशु को अलग रखने का इन्तेजाम करें। बीमार मवेशी को यथाशीघ्र गो–सदन में भेज देना ही उचित है, क्योंकि यह एक असाध्य रोग है।

थनैल

दुधारू मवेशियों को यह रोग दो कारणों से होता है। पहला कारण है थन पर चोट लगना या थन का कट जाना एवं दूसरा कारण है संक्रामक जीवाणुओं का थन में प्रवेश कर जाता। पशु को गंदे, दलदले स्थान पर बांधने तथा दुहने वाले की असावधानी के कारण थन में जिवाणु प्रवेश कर जाते हैं। अनियमित रूप से दूध दूहना भी थनैल रोग को निमंत्रण देना है साधारणः अधिक दूध देनेवाली गाय–भैंस इसका शिकार बनती है।

लक्षण : थन गर्म और लाल हो जाना, उसमें सूजन होना, शरीर का तापमान बढ़ जाना, भूख न लगना, दूध का उत्पादन कम हो जाना, दूध का रंग बदल जाना तथा दूध में जमावट हो जाना इस रोग के खास लक्षण हैं।

चिकित्सा : पशु को हल्का और सुपाच्य आहार देना चाहिए। सूजे स्थान को सेंकना चाहिए। पशुचिकित्सक की राय से ऐण्टीबायोटिक दवा या मलहम का इस्तेमाल करना चाहिए।

संक्रामक गर्भपात

यह बीमारी गाय–भैंस को ही आम तौर पर होती है। कभी कभार भेड़ बकरी भी इससे आक्रांत हो जाते हैं।

लक्षण : पहले पशु को बेचैनी जाती है और बच्चा पैदा होने के सभी लक्षण दिखाई देने लगते हैं। योनिमुख से तरल पदार्थ बहने लगता है। आमतौर पर पांचवे–छठे महीने ये लक्षण दिखाई देने लगते हैं और गर्भपात हो जाता है। प्रायः जैर अन्दर ही रह जाता है।

चिकित्सा : सफाई का पूरा इन्तेजाम करें। बीमार पशुओं को अलग कर देना चाहिए। गर्भपात के बाद पिछला भाग गुनगुने पानी से धोकर पोंछ देना चाहिए। गर्भपात के भ्रुण को जला देना चाहिए। जिस स्थान पर गर्भपात हो, उसे रोगणुनाशक दवा के घोल से धोना चाहिए। पशुचिकित्सक को बुलाकर उनकी सेवाएं हासिल करनी चाहिए।

नोट : 6 से 8 महीने के पशु को इस रोग (ब्रुसोलोसिस) का ठीका लगवा देने से इस रोग का खतरा कम रहता है।

सामान्य रोग

संक्रामक रोगों के अलावा बहुत सारे साधारण रोग भी हैं जो पशुओं की उत्पादन–क्षमता को कम कर देते हैं। ये रोग ज्यादा भयानक नहीं होते, लेकिन समय पर इलाज नहीं कराने पर काफी खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। नीचे प्रमुख साधारण बीमारियों के लक्षण और प्राथमिक चिकित्सा के तरीके बतलाए जा रहे हैं।

अफरा

हरा और रसीला चारा, भींगा चारा या दलहनी चारा अधिक मात्रा में खा लेने के कारण पशु को अफरा की बीमारी हो जाती है। खासकर, रसदार चारा जल्दी–जल्दी खाकर अधिक मात्रा में पानी पीने से यह बीमारी पैदा होती है। बाछा–बाछी को ज्यादा दूध पी लेने के कारण भी यह बीमारी हो सकती है। पाचन शक्ति कमजोर हो जाने पर मवेशी को इस बीमारी से ग्रसित होने की आशंका अधिक होती है।

लक्षण : एकाएक पेट फूल जाता है। ज्यादातर रोगी पशु का बायां पेट पहले फूलता है। पेट को थपथपाने पर ढोल की तरह (ढप–ढप) की आवाज निकलती है। पशु कराहने लगता है। फूले पेट की ओर बराबर देखता है। पशु को सांस लेने में तकलीफ होती है। रोग बढ़ जाने पर पशु चारा–दाना छोड़ देता है। बेचैनी बढ़ जाती है। झुक कर खड़ा होता है और अगल–बगल झाँकता रहता है। रोग के अत्यधिक तीव्र अवस्था में पशु बार–बार लेटता और खड़ा होता है। पशु कभी–कभी जीभ बाहर लटकाकर हांफता हुआ नजर आता है। पीछे के पैरों को बार–बार पटकता है।

ऐसी स्थिति में तुरंत इलाज नहीं करने पर रोगी पशु मर भी सकता है।

चिकित्सा : पशु के बायें पेट पर दबाव डालकर मालिश करनी चाहिए। उस पर ठण्डा पानी डालें और तारपीन का तेल पकाकर लगाएं। मुंह को खुला रखने का इन्तेजाम करें। इसके लिए जीभी को मुंह से बाहर निकालकर जबड़ों के बीच कोई साफ और चिकनी लकड़ी रखी जा सकती है। रोग की प्रारंभिक अवस्था में पशु को इधर–उधर घुमाने से भी फायदा होता है। पशु को पशुचिकित्सक से परामर्श लेकर तारपीन का तेल आधा से एक छटाक, छः छटाक तीसी के तेल में मिलाकर पिलाया जा सकता है। उसके बाद दो सौ ग्राम मैगसल्फ और दो सौ ग्राम नमक एक बड़े बोतल पानी में मिलाकर जुलाब देना चाहिए। पशु को लकड़ी के कोयले का चूरा, आम का पुराना

अचार, काला नमक, अदरख, हींग और सरसों जैसी चीज पशु चिकित्सक के परामर्श से खिलायी जा सकती है। पशु को स्वस्थ होने पर थोड़ा–थोड़ा पानी दिया जा सकता है, लेकिन किसी प्रकार का चारा नहीं खिलाया जाए। पशु चिकित्सक की सेवाएं तुरंत प्राप्त करनी चाहिए।

यकृत कृमि

यह बीमारी तीक्ष्ण अथवा चिरकालिक होती है। इसका कारण एक खास प्रकार की कृमि है। यह कृमि यकृत तथा पित्त की नलियों में रहती है। यह चिपटी या यों कहिये कि पत्ते के समान होती है। इस प्रकार की जो कृमियां हमारे बिहार प्रांत में हैं, उसे फैसियोला इन्डीका कहा गया है। चूँकि यह कृमि यकृत एवं पित्त की नलियों में रहती है, इसे यकृत–कृमि कहते है। यह बीमारी समस्त संसार के पशुओं में पायी जाती है और इससे अपार हानि होती है। अतः पशुधन–उद्योग में आर्थिक दृष्टिकोण से इसका महत्वपूर्ण स्थान है। गाय, भैंस, बकरे, भेंड़, सूअर तथा मनुष्य भी इस कृमि के शिकार होते है। ये कृमियाँ अधिकतर चौर तथा अन्य निम्नतर स्थानों में पायी जाती हैं, क्योंकि इनका जीवन–चक्र एक खास प्रकार के घोंघे पर आधारित हैं। इन घोंघे के द्वारा ही बीमारी फैलती है।

बिहार की खास जगहों में ही यह बीमारी अधिकतर होती है। पूर्णियाँ, सहरसा, दरभंगा, मुजफ्फरपुर का पूर्वी भाग तथा भागलपुर और मुंगेर जिले का उत्तरी भाग इस बीमारी से ज्यादातर प्रभावित होते हैं। उपर्युक्त सभी जगहें कोशी नदी तथा इसकी शाखाओं–प्रशाखाओं से घिरी हुई है और वहाँ का वातावरण भी इस बीमारी के प्रसार में सहायक है। इन इलाकों में जो घोंघे अधिकतर पाये जाते हैं, वे इन्हीं कृमियों के जीवन–साथी हैं। इन्हें लिमनिया और कुलारिया रेस रूफसेन्स कहते हैं। गाय, भैंस, बकरे तथा भेड़ सब के सब इस बीमारी के शिकार होते हैं, परन्तु खासकर भैंस भयंकर रूप से पीड़ित होती है। लगभग 50 से 90 प्रतिशत पशु इन इलाकों में इस कृमि के शिकार हैं। सभी उम्र के नर–मादा पशु इस रोग से ग्रसित हुआ करते हैं। नवजात कृमियाँ आंत से यकृत में प्रवेश करते समय पशुओं को काफी नुकसान पहुँचाती है और पित्त की नलियों में जाकर बस जाने पर काफी हानिकारक हो जाती है। इसके कारण यकृत अपना काम नियमित रूप से पूरा नहीं कर पाता और इसका प्रतिफल पशुओं के स्वास्थ्य पर पड़ता है। फलतः दूध की कमी, बछड़ों तथा बैलों से काम करने की शक्ति का ह्रास तथा भेंड़ से ऊन के उत्पादन में भारी कमी हो जाती है। इतना ही नहीं, मांस

के वजन तथा इसके जायकेदार स्वाद में भी कमी आ जाती है। इसके साथ ही उत्पादन शक्ति में भी कमी हो जाती है। बहुत से पशु तो मौत के शिकार भी हो जाते हैं। चिरकालिक बीमारी की अवस्था में पशुओं में भुख की कमी, कब्जीयत तथा पैखाने में बदबू (जो पीछे शूल के रूप में परिणत हो जाता है) आँखों से कींच का चलन, रोओं का रूखड़ापन, खून की कमी, वृद्धि तथा विकास में बाधा, धीरे–धीरे कमजोर होते जाना आदि इसके लक्षण है।

बड़ी–बड़ी कृमियाँ पित्त की नलियों में रहती हैं। वे वहाँ अंडे देती हैं, जो पशुओं के मल के साथ बाहर निकालता है। अनुकूल स्थितियों में कुछ दिनों के बाद इन अंडों से पान के पते के सदृश भ्रूण निकालते हैं। ये पानी में भली–भाँति तैरते रहते हैं और खास प्रकार के घोंघों को पाकर उनमें प्रवेश कर जाते हैं वहाँ उनकी दो अवस्थाएँ होती हैं। अंत में प्रायः चार–छः सप्ताह के बाद वे अन्य–भ्रूण के रूप में बाहर निकल जाते हैं, जिन्हें सरकेरी कहते हैं। वहाँ से वे शाक–जीवी पशु जैसे गाय, भैंस, बकरें, भेड़ें और सूअर आदि के पेट में पहुँचते है। आगे बढ़ते हुए ये पित्त–नालियों में पहुँच जाते हैं और वहीं अपना जीवन निर्वाह करते हैं। एक अनुसंधान द्वारा पता लगा है कि एक अंडे से लगभग 500 भ्रूण उत्पन्न होते हैं और उनमें से प्रत्येक बड़े वयस्क कृमि के रूप में तैयार हो जाते हैं।

नियंत्रणः इस बीमारी को रोकने के लिये इन कृमियों के जीवन–चक्र को ध्यान में रखना परमावश्यक है। प्रसार क्षेत्र में इसका प्रचार विचित्र तरह से होने के फलस्वरूप यह देखा गया है कि पीड़ित पशुओं का इलाज ही बहुत हद तक बीमारी के प्रसार को रोक सकता है। अतः इसका प्रयोग वृहत् रूप से होना अत्यावश्यक है।

इसके इलाज के लिये दो दवा प्रमुख है:

1. आक्सिक्लोजानाइड एक ग्राम प्रति 100 किलो शरीर के वजन के आधार पर
2. ट्राइक्लाबेन्डाजोल 12.5 मि.ग्रा. प्रति किलो शरीर के वजन के आधार पर दिया जा सकता है।

दुग्ध–ज्वर

दुधारू गाय भैंस या बकरी इस रोग के चपेट में पड़ती है। ज्यादा दुधारू पशु को ही यह बीमारी अपना शिकार बनाती है। बच्चा देने के 24 घंटे के अन्दर दुग्ध–ज्वर के लक्षण साधारणतया दिखते हैं।

लक्षण: पशु बेचैन हो जाता है। पशु कांपने और लड़खड़ाने लगता है। मांसपेशियों में कम्पन होता है, जिसके कारण पशु खड़ा रहने में असमर्थ रहता है। पलके झुकी–झुकी और आंखे निस्तेज सी दिखाई देती है। मुंह सूख जाता है। तापमान सामान्य रहता है या उससे कम हो जाता है। पशु सीने के सहारे जमीन पर बैठता है और गर्दन शरीर की एक ओर मोड़ लेता है। ज्यादातर पीड़ित पशु इसी अवस्था में देखे जाते हैं। तीव्र अवस्था में पशु बेहोश हो जाता है और गिर जाता है। चिकित्सा नहीं करने पर पशु 24 घंटे के अन्दर मर भी सकता जाता है।

चिकित्सा: थन को गीले कपड़े से पोंछ कर उसमें साफ कपड़ा इस प्रकार बांध दें कि उसमें मिट्टी न लगे। थन में हवा भरने से लाभ होता है। ठीक होने के बाद 2–3 दिनों तक थन को पूरी तरह खाली नहीं करें। पशु को जल्दी और आसानी से पचने वाली खुराक दें। पशु चिकित्सक का परामर्श लेना नहीं भूलें।

दस्त और मरोड़

इस रोग के दो कारण हैं अचानक ठंडा लग जाना और पेट में कीटाणुओं का होना। इसमें आंत में सूजन हो जाती है।

लक्षण: पशु को पतला और पानी जैसा दस्त होता है। पेट में मरोड़ होता है। आंव के साथ खून गिरता है।

चिकित्सा: आसानी से पचने वाला आहार जैसे माड़, उबला हुआ दूध, बेल का गूदा आदि खिलाना चाहिए। चारा पानी कम देना चाहिए। बाछा–बाछी को कम दूध पीने देना चाहिए। पशु चिकित्सक की सेवायें प्राप्त करनी चाहिए।

जेर का अन्दर रह जाना

पशु के व्याने के बाद चार–पांच घंटों के अन्दर ही जेर का बाहर निकल जाना बहुत जरूरी है। कभी कभार जेर अन्दर ही रह जाता है जिसका कुपरिणाम मवेशी को भुगतना पड़ता है। खास कर गर्मी में अगर जेर छः घंटा तक नहीं निकले तो इसका नतीजा काफी बुरा हो सकता है। इससे मवेशी के बॉझ हो जाने की आशंका भी बनी रहती है। जेर रह जाने के कारण गर्भाशय में सूजन आ जाती है और खून भी विकृत हो जाता है।

लक्षण: बीमार गाय या भैंस बेचैन हो जाती है। झिल्ली का एक हिस्सा योनिमुख से बाहर निकल आता है। बदबुदार पानी निकलने लगता है, जिसका रंग चॉकलेटी होता है। दूध भी फट जाता है।

चिकित्सा: पिछले भाग को गर्म पानी से धोना चाहिए। धोते समय इस बात का ख्याल रखें कि जेर में हाथ ना लगे। जेर को निकालने के लिए किसी प्रकार का जोर नहीं लगाया जाय। पशु चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए।

योनि का प्रदाह

यह रोग गाय–भैंस के व्याने के कुछ दिन बाद होता है। इससे भी दुधारू मवेशियों को काफी नुकसान पहुँचता है। प्रायः जेर का कुछ हिस्सा अन्दर रह जाने के कारण यह रोग होता है।

लक्षण: मवेशी का तापमान थोड़ा बढ़ जाता है। योनी मार्ग से दुर्गन्धपूर्ण पिब की तरह तरल पदार्थ गिरता रहता है। बैठे रहने की अवस्था में तरल पदार्थ गिरता है। बेचैनी बहुत बढ़ जाती है। दूध घट जाता है या ठीक से शुरू ही नहीं हो पाता है।

चिकित्सा: गुनगुने पानी में थोड़ा सा डेटॉल या पोटाश मिलाकर रबर की नली की सहायता से गर्भाशय की धुलाई कर देनी चाहिए। पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

नोट: इससे पशु को बचाने के लिए सावधानी बरतनी जरूरी है, अन्यथा पशु के बाँझ होने की आशंका रहेगी।

निमोनिया

पानी में लगातार भींगते रहने या सर्दी के मौसम में खुले स्थान में बांधे जाने वाले मवेशी को निमोनिया रोग हो जाता है। अधिक बाल वाले पशुओं को यदि धोने के बाद ठीक से पोछा ना जाए तो उन्हें भी यह रोग हो सकता है।

लक्षण : शरीर का तापमान बढ़ जाता है। साँस लेने में कठिनाई होती है। नाक से पानी बहता है। भूख कम हो जाती है। पैदावार घट जाती है। पशु कमजोर हो जाता है।

चिकित्सा : बीमार मवेशी को साफ तथा गर्म स्थान पर रखना चाहिए। उबलते पानी में तारपीन का तेल डालकर उससे उठने वाला भाप पशुओं को सुंघाने से फायदा होता है। पशु के पांजर में सरसो तेल में कपूर मिलाकर मालिश करनी चाहिए। पशु चिकित्सक के परामर्श से इलाज की व्यवस्था करना आवश्यक है।

घाव

पशुओं को घाव हो जाना आम बात है। चरने के लिए बाड़ा टपने के दौरान तार, कांटों या झाड़ी से कटकर अथवा किसी दूसरे प्रकार की चोट लग जाने से मवेशी को घाव हो जाता है। हल का फाल लग जाने से भी बैल को घाव हो जाता है और किसानों की खेती–बाड़ी चौपट हो जाती है। बैल के कंधों पर पालो की रगड़ से भी सूजन और घाव हो जाता है।

ऐसे सामान्य घाव और सूजन को निम्नांकित तरीके से इलाज करना चाहिए।

चिकित्सा : सहने लायक गर्म पानी में लाल पोटाश या फिनाइल मिलाकर घाव की धुलाई करनी चाहिए। अरग घाव में कीड़े हो तो तारपीन के तेल में भींगोई हुई पट्टी बांध देनी चाहिए। मुंह के घाव को फिटकिरी के पानी से धोकर छोआ और बोरिक एसिड का घोल लगाने से फायदा होता है। शरीर के घाव पर नारियल के तेल में 1/4 भाग तारपीन का तेल और थोड़ा सा कपूर मिलाकर लगाना चाहिए।

परजीवी जन्य रोग

बाह्य एवं आंतरिक परजीवियों के कारण भी मवेशियों को कई करने की बीमारियाँ परेशान करती है।

बछड़ों का रोग : निम्नांकित रोग खास कर कम उम्र के बछड़ों को परेशान करते हैं।

नाभि रोग

लक्षण : नाभि के आस–पास सूजन हो जाती है, जिसको छूने पर रोगी बछड़े को दर्द होता है। बाद में सूजा हुआ स्थान मुलायम हो जाता है तथा उस स्थान को दबाने से खून मिला हुआ पीव निकलता है। बछड़ा सुस्त हो जाता है। हल्का बुखार रहता है।

चिकित्सा : सूजे हुए भाग को दिन में दो बार गर्म पानी से सेंकना चाहिए। घाव का मुंह खुल जाने पर उसे अच्छी तरह साफ कर उसमें एन्टीबॉयोटिक पाउडर भर देना चाहिए। इस उपचार को जब तक घाव भर ना जाए तब तक चालू रखना चाहिए। पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

कब्जियत

बछड़ों के पैदा होने के बाद अगर मल नहीं निकले तो कब्जियत हो सकती है।

चिकित्सा : 50 ग्राम पाराफिन लिक्विड (तरल) 200 ग्राम गर्म दूध में मिलाकर देना चाहिए। साबुन के घोल का एनिमा देना भी लाभदायक है।

सफेद दस्त

यह रोग बछड़ों को जन्म से तीन सप्ताह के अन्दर तक हो सकता है। यह छोटे–छोटे कीटाणु के कारण होता है। गंदे बथान में रहने वाले बछड़े या कमजोर बछड़े इस रोग का शिकार बनते हैं।

लक्षण : बछड़ों का पिछला भाग दस्त से लथ–पथ रहता है। बछड़ा सुस्त हो जाता है। खाना–पीना छोड़ देता है। शरीर का तापमान कम हो जाता है। आंखे अन्दर की ओर धंस जाती है।

चिकित्सा : निकट के पशु चिकित्सक के परामर्श से ईलाज कराना चाहिए।

कौक्सिडियोमिस

यह रोग कौक्सिडिया नामक एक विशेष प्रकार के कीटाणु को शरीर के भीतर प्रवेश कर जाने के कारण होता है।

लक्षण: रोग की साधारण अवस्था में दस्त के साथ थोड़ा–थोड़ा खून आता है। रोग की तीव्र अवस्था में बछड़ा खाना–पीना छोड़ देता है। कुथन के साथ पैखाना होता है जिसमें खून का कतरा आता है। बछड़ा कमजोर होकर किसी दूसरी बीमारी का शिकार भी बन सकता है।

चिकित्सा: जितना जल्द हो सके पशु चिकित्सक को बुलाकर इलाज शरू कर देना चाहिए।

रतौंधी

यह रोग साधारणतः बछड़ों को ही होता है। संध्या होने के बाद से सूरज निकलने के पहले तक रोग ग्रस्त बछड़ा करीब–करीब अंधा बना रहता है। फलतः उसे अपना चारा खाने में भी कठिनाई होती है। दूसरे बछड़ों या पशु से टकराव भी हो जाता है।

चिकित्सा: इन्हें कुछ दिन तक 20 से 30 बूंद तक कौड लीवर ऑयल दूध के साथ खिलाया जा सकता है। पशु चिकित्सक से परामर्श लिया जाना जरूरी है।